मृदंगम का विज्ञान

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

मृदंगम एक ताल वाद्य है जिसका उपयोग भारतीय शास्त्रीय संगीत में सहस्त्राब्दियों से हो रहा है। मृदंगम को दोतरफा ड्रम कहना उचित नहीं है क्योंकि इसे बजाने वाले उस्ताद इसमें से ध्वनियों और सुरों की ऐसी धारा प्रवाहित कर सकते हैं कि लगेगा कि यह गा रहा है। स्व. पालघाट मणि अय्यर ऐसे ही उस्ताद थे और श्री उमयलापुरम शिवरामन संभवतः आज के सबसे महान मृदंगम वादक हैं।

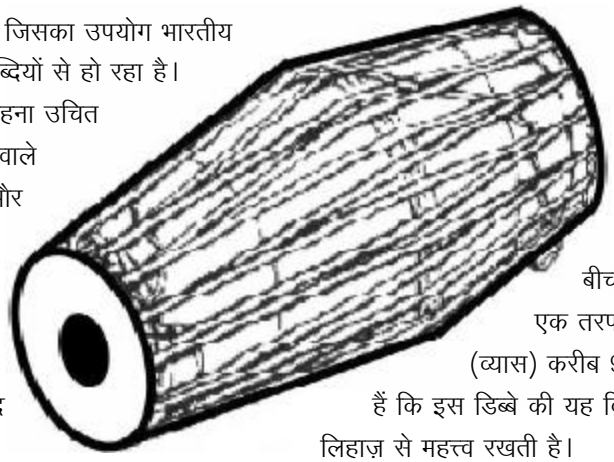

इतना सरल-सा दिखने वाला यह वाद्य यंत्र कैसे ध्वनियों का इतना सुंदर इंद्रधनुष पैदा करता है? इस सवाल ने सी.वी.रामन, बी.एस.रामकृष्णन, आर.बी.भट्ट और टी.रामासामी जैसे वैज्ञानिकों को आकृष्ट किया है। डॉ.रामासामी केंद्रीय चमड़ा अनुसंधान संस्थान के मुखिया थे और अब भारत सरकार के विज्ञान व टेक्नॉलॉजी विभाग में सचिव हैं। केंद्रीय चमड़ा अनुसंधान संस्थान के डॉ. एम.डी. नरेश और डॉ. रामासामी पिछले कई वर्षों से श्री उमयलापुरम शिवरामन के साथ मिलकर यह समझने का प्रयास कर रहे हैं कि मृदंगम का हर हिस्सा उसकी ध्वनियों और स्वरों में क्या योगदान देता है। अपने छः वर्षों के शोध के निचोड़ को उन्होंने हाल ही में, 12 सितंबर के दिन, एक संयुक्त व्याख्यान के रूप में प्रस्तुत किया - 'सांगीतिक उत्कृष्टता के लिए विज्ञान'। इस प्रस्तुतीकरण में एक ओर संगीतज्ञ मृदंगम वादन करते थे तथा दूसरी ओर वैज्ञानिक अपने विश्लेषण के परिणाम प्रस्तुत करते जाते थे। दूसरे शब्दों में कला और विज्ञान की सुंदर जुगलबंदी थी।

सामान्य मृदंगम लकड़ी का लगभग 24 इंच लंबा असममित शंकु होता है। एक तरफ यह 6.75 इंच चौड़ा होता है तथा दूसरी तरफ 7.75 इंच। बीचों-बीच (वास्तव में थोड़ा एक तरफ हटकर) इसकी चौड़ाई (व्यास) करीब 9.8 इंच होती है। बताते हैं कि इस डिब्बे की यह विशिष्ट आकृति ध्वनि के लिहाज़ से महत्त्व रखती है।

मृदंगम के आकार और निर्माण की विधि का असर उसकी स्वर गुणवत्ता पर होता है। वादकों ने यंत्र को बजाकर दिखाया कि यह असर कैसे होता है, तो वैज्ञानिकों ने लकड़ी व चमड़े के घनत्व, कठोरता व तन्य क्षमता को लेकर अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया। इसके अलावा उन्होंने ध्वनि आवृत्तियों का फास्ट फुरियर ट्रांसफॉर्मेशन भी पेश किया।

मृदंगम के निर्माण में चार तरह की लकड़ी का उपयोग होता है - कटहल, पामिरा, रेड सैण्डर्स और केसिया। रामासामी-नरेश के विश्लेषण के मुताबिक घनत्व, कठोरता व 'ध्वनि विसरण गुणांक' के आधार पर कटहल सर्वोत्तम विकल्प साबित होता है।

मृदंगम के दोनों खुले सिरों को ढंकने के लिए जानवरों के चमड़े का उपयोग किया जाता है। इससे अंदर एक ध्वनि अनुनादक स्तंभ बन जाता है। तो किस जानवर का चमड़ा सर्वोत्तम है? गाय व बकरे के चमड़े (इनका उपयोग सर्वाधिक होता है) की तुलना करने पर बकरे का चमड़ा बेहतर पाया गया। मोटाई एक समान हो, तो बकरे का चमड़ा ज़्यादा मज़बूत होता है। बकरे के चमड़े के घनेपन और तन्यता की विशेष भूमिका है। इसके

रेशा पुंजों की औसत लंबाई (करीब 25 माइक्रॉन) गाय के चमड़े के रेशा पुंजों की औसत लंबाई (करीब 85 माइक्रॉन) की एक-तिहाई होती है। और तो और, इस बात से भी फर्क पड़ता है कि बकरा कहां का है। पूर्वी भारत का चूने से पकाया गया चमड़ा सर्वोत्तम प्रतीत होता है। मगर माना जाता है कि बकरे के चमड़े को लकड़ी पर कसने के लिए सबसे बढ़िया तार भैंस के चमड़े से बना होना चाहिए।

मृदंगम में लगे चमड़े पर बजाने के क्षेत्र को चिन्हित करने के लिए किसी चीज़ का एक काला गोला बनाया जाता है। इस काले गोले से नाद पैदा होता है। विश्लेषण से पता चला कि यह काला पदार्थ अकार्बनिक रसायनों और चिपकने वाले पदार्थों को मिलाकर बनाया जाता है। अकार्बनिक पदार्थों में रेत सबसे आम तौर पर प्रयुक्त होती है। इस गोले को बनाने के लिए चावल की लुगदी और नारियल से बनी अत्यंत पतली-पतली डंडियों का उपयोग किया जाता है। काले गोले का संघटन, परतों की संख्या, कणों का आकार, कणों का पदार्थ वगैहर मिलकर तय करते हैं कि उस यंत्र की नाद कैसी होगी। यह उस यंत्र का व्यक्तित्व-सा होता है। यंत्र निर्माता के साथ मिलकर उस्ताद वादक स्वयं यह काला गोला तैयार करते हैं। इस तरह से निहायत व्यक्तिगत यंत्र और नाद हस्ताक्षर का निर्माण होता है।

इस संदर्भ में काले गोले के संघटन व मोटाई को लेकर वैज्ञानिक विश्लेषण ने काफी महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराई है। दिक्कत यह है कि समय के साथ मृदंगम बनाने वालों का कुनबा छोटा होता गया है। श्री जॉनसन ऐसे परिवार से हैं जिनमें मृदंगम बनाने की प्राचीन परंपरा रही है। मगर अब ऐसे मुट्ठी भर लोग ही बचे हैं। इसलिए वैज्ञानिक विश्लेषण और मानकीकरण भविष्य के लिए उपयोगी होगा। इस पृष्ठभूमि में डॉ. रामासामी, डॉ. नरेश, श्री शिवरामन के साथ-साथ श्री जॉनसन और केंद्रीय चमड़ा अनुसंधान से सेवा निवृत्त हो चुके सर्वश्री कलाइवसु, वी. अरुमुगम, और आर. संजीवी का काम और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

उदाहरण के लिए चमड़े व काले गोले पर ठोंकने से 'धीम' ध्वनि की आवृत्ति 146 हर्ट्ज़ होती है। द्वितीय हार्मोनिक अर्थात 'चापू' 275 हर्ट्ज़ का होता है जबकि 'नम/मेत्तु' 410 हर्ट्ज़ होता है। ध्यान दें कि 24 इंच के अनुनादक के लिए जो आवृत्ति है, धीम की आवृत्ति उससे 1.07 गुना अधिक है। इससे काले गोले की भूमिका स्पष्ट होती है। इसी प्रकार से धीम और चापू का अनुपात 0.5 न होकर 0.35 है।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि किसी ध्वनि को 'समाप्त' होने में कितना समय लगता है। 'ध्वनि से खामोशी' की यह अवधि काले गोले पर और वादक द्वारा ठोंकने के तरीके पर निर्भर करती है। श्री शिवरामन का 'आरेचापू' यानी आधा हाथ (चमड़े के किनारे पर लगभग चपटे हाथ से चोट) जो ध्वनियां पैदा करता है वे द्वितीय, चतुर्थ व अष्टम हार्मोनिक्स की होती हैं (275, 550 और 1100 हर्ट्ज़)। हाथों का हुनर ही तो है।

इस तरह का वैज्ञानिक विश्लेषण मज़ेदार होने के साथ-साथ व्याख्या भी करता है। मगर यह इससे भी ज़्यादा है। इससे मृदंगम बनाने वाले कारीगरों को मानकीकृत जानकारी की मदद मिलेगी। डॉ. रामासामी का मत है, "विज्ञान की संस्कृति मापन, खोज, मानकीकरण और अंशशोधन की है।" कला की संस्कृति महसूस करने, सृजन करने, विभेदन करने और मानक स्थापित करने की है। इस प्रयास में इन दो संस्कृतियों का संगम हुआ है। ***(स्रोत फीचर्स)***